THE TIMES OF INDIA

Date: 02-06-26

Adults In The Room

SC did well to liberate voluntary adult sex workers. They're neither victim nor offender

TOI Editorials

In an excellent judgment, Supreme Court has centred on 'individual agency' to decide on a framework for rescue & rehab of adult sex workers. It raised the key question the law skipped: why rescue adult women who are sex workers voluntarily, and do not need "rescuing"? SC went on to sharply delineate categories – coerced, trafficked, or voluntarily engaged in sex work. It called out Sec 17 of the Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956 (ITPA) for its "paternalistic assumption" that treats all persons rescued from prostitution-related situations in the same manner, that such a "one-size-fits-all" approach fails to account for the different realities of the "rescued".

The bench took its time and delivered a powerful, empowering and progressive judgment, using its powers (Articles 32 and 142) to write out how police should go about their missions.

Cops and magistrates must first question – hold a threshold inquiry – before embarking on rescuing adult sex workers. And for those rescued, SC has also detailed conditions for safe houses. It's clear: there is no confusion – prostitution is legal, soliciting illegal, an individual practising prostitution, as livelihood, cannot be criminalised. Where ambiguity lay, SC said, was in the law treating all sex work as "solely being abusive or exploitative." It's empowering for voluntary adult sex workers – their own wishes and choices will be key to decisions on rehabilitation, or returning to the community. The only exceptions, SC ruled, are when there are safety risks or when their decision is influenced by pressure, threats, or coercion. Determining that is the magistrate's job.

This order is a first step in freeing sex workers from police harassment during raids. They are harassed even otherwise – these exploitations are well-documented. Failure to distinguish voluntary adult sex work from trafficking in ITPA's wording has long meant inconsistent application, even misapplication of the law. SC has cleared the air, and liberated a whole lot of workers.

THE HINDU

Date: 02-06-26

Joy and pain

Health gains from NFHS-6 are significant, but unaddressed needs exist

Editorial

When triumph and disaster arrive at the same time, it is important to cele- brate, but also, to take stock, assess, and pivot to address the lacuna. The recently re- leased National Family Health Survey (NFHS)-6 data offer such an opportunity.

The data for 2023-24 revealed some remarkable gains for In- dia, but also exposed some unguarded pathways that will become disastrous if not attended to. The greatest of the gains came in the sector of child health stunting is down by 17%; severe wasting is down 32%; institutional deliveries are at over 90%; and full immunisation coverage for children aged 12-23 months rose to over 87%. Ad- ditionally, the figures show that India's Total Fer- tility Rate (TFR) had stabilised at 2.0, below the replacement level of 2.1 Unequivocally, these are gains; ones that India has been working on for de- cades. It is an encouraging sign that the needle has finally moved, in these crucial sectors. These gains will have to be built upon, without any drop in service delivery, while remaining uncompro mising on access or quality of services in the pu blic sector. However, health managers need to heed the other side of the paradigm as well. NFHS-6 indicates a 'dual public health burden' - obesity (in three years, it had grown from 22.9% to 27.3% among men, while among women, from 24% to 30.7%) remains problematic while some level of malnutrition continues, besides the on- slaught of lifestyle diseases. The survey also showed a decline in exclusive breastfeeding among children under six months, from 63.7% in NFHS-5 to 55.8% in NFHS-6. Breast feeding is es- sential to prevent infant malnutrition.

The NFHS, one of the largest cross-sectional household surveys in the world, could easily be considered the primary tool to define public pol icy, and evidence-based governance, besides tracking development indicators. The data it gen- erates are crucial. Other India-level data from si- milar periods indicate similar trends; the SRS and the National Health Accounts Survey reveal the lack of focus or funds for lifestyle diseases, and metabolic disorders. The danger of letting this continue will be known sooner rather than later, as India progresses through a demographic tran sition to a greyer nation. At this stage, transfor mations are still possible. Setting up comprehen- sive screening programmes for NCDs, stressing on nation-wide behaviour change communica- tion on diet and exercise, and ensuring higher taxes on sugared beverages and packaged foods are all techniques that will help reduce, and limit the burden, of NCDs. Bolstering health systems to tackle these NCDs, once they set in, at every level -village, town and city -- is also critical.

दैनिक भास्कर

Date: 02-06-26

महंगाई से गरीबों को बचाने पर फोकस होना चाहिए

संपादकीय

खाड़ी संकट से बढ़ने वाली महंगाई को लेकर पहली बार आरबीआई की नीति-निर्धारक इकाई- छह सदस्यीय मॉनेटरी पॉलिसी समिति (एमपीसी)- जून 3-5 के बीच फैसले लेगी। रेपो रेट तय करने वाले प्रमुख मुद्दे होंगे आसन्न महंगाई से गरीबों को बचाना और विकास दर गिरने से रोकना। समिति को मालूम है 2013-14 और 2025-26 के 12 वर्षों में सीपीआई (उपभोक्ता मूल्य सूचकांक) 112.2 से बढ़कर 196.5 हो चुका है, यानी 75.13% वृद्धि। इसके उलट श्रमिकों के तीन वर्गों - वेतनभोगी, स्व-नियोजित और कैजुअल लेबर (दिहाड़ी मजदूर) की आय क्रमशः 405, 35.2 और 51.2% ही बढ़ी है। दुर्भाग्य यह कि सरकारी आंकड़ों में भी अगर किसी दिहाड़ी मजदूर ने किसी दिन एक घंटे भी काम किया है तो उसे पूरे हफ्ते एम्प्लॉय्ड वर्ग में माना जाएगा। आईएलओ की तरह सरकार भी यह मानती है कि दिहाड़ी मजदूर बैठा नहीं रहता, जबकि बारिश-गर्मी के दिनों में इन्हें ज्यादा काम नहीं मिलता। जब दिहाड़ी मजदूरों की आय बढ़ी दिखाई देती है तो सरकार उन्हें नियोजित मान लेती है। हकीकत यह है कि पिछले दस वर्षों में खाद्यान्नों की कीमतें इलेक्ट्रॉनिक्स के मुकाबले ज्यादा बढ़ी हैं यानी गरीबों को चोट ज्यादा पहुंची है क्योंकि उसकी आय का बड़ा भाग भोजन पर खर्च होता है। आंकड़ों के सही न होने से योजनाकार सही आकलन नहीं कर पाते।

Date: 02-06-26

कहीं घाटे का सौदा नहीं साबित होने लगे 'एआई'

रघुराम राजन, (आरबीआई के पूर्व गवर्नर)

एआई टूल्स यकीनन हमारे काम की प्रकृति को बदल रहे हैं। बड़े भाषा मॉडल्स (एलएलएम) पहले ही मेरे अपने शोध पत्रों पर ऐसी रिपोर्टें तैयार कर सकते हैं, जो मनुष्यों द्वारा बनाई रिपोर्टों को कड़ी चुनौती दे सकते हैं। मनुष्यों के विपरीत- जो हमेशा समय की कमी से जूझते हैं- एक एलएलएम पलभर में बहुत अधिक सूचनाओं तक पहुंच रखता है और अमूमन उसमें पूर्वग्रह भी कम होते हैं। एआई मेरी विश्लेषणात्मक कमजोरियों की ओर भी इशारा करता है, प्रूफ चेक करता है और सुधार के लिए सुझाव देता है। मनुष्यों के द्वारा बनाई जाने वाली रिपोर्टें शायद ही कभी इससे बेहतर होती हैं।

फिर भी, एआई को लेकर बाजार में जो अतिशय उत्साह दिखाया जा रहा है, वो अब चिंता का सबब बन गया है। ऐसे में इस पर विचार करना जायज है कि एआई आपूर्ति शृंखला में चीजें कहां पर गलत हो सकती हैं। एआई की आपूर्ति शृंखला बुनियादी ढांचे के उत्पादकों और डिजाइनरों के साथ शुरू होती है : टीएसएमसी और सैमसंग जैसी कंपनियां चिप्स बनाती हैं; एनवीडिया उनको डिजाइन करती है और सिस्को कनेक्टिविटी प्रदान करती है।

इसके बाद अमेजन, गूगल और माइक्रोसॉफ्ट जैसे हाइपरस्केलर आते हैं। वे अपने स्वयं के एआई मॉडल के उपयोग के लिए और दूसरों को कंप्यूटिंग क्षमता बेचने के लिए डेटा सेंटर बना रहे हैं। हाइपरस्केलरों के अलावा इक्विनीक्स (डेटा सेंटर) जैसी कंपनियां और यकीनन मौलिक एलएलएम के डेवलपर्स- एन्थ्रोपिक और ओपनएआई भी हैं। सबसे अंत में, एआई सेवाओं के एंड-यूजर्स हैं। व्यक्तियों द्वारा एआई का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है और कुछ क्षेत्रों (जैसे सॉफ्टवेयर डेवलपमेंट और कस्टमर सपोर्ट) में भी कॉर्पोरेट उपयोग विस्फोटक गति से बढ़ा है।

लेकिन अधिकांश बड़ी कंपनियां अभी तक एंड-टु-एंड उपयोगों को लागू नहीं कर पाई हैं। कई को अभी भी अपने ऐतिहासिक डेटा को व्यवस्थित करने और पारंपरिक ऑपरेशंस को पुनर्गठित करने की आवश्यकता है, ताकि एआई को और सुधार के लिए डिप्लाई किया जा सके। इसके अलावा, कई फर्में डेटा सुरक्षा, त्रुटियों और गलत जानकारियों को लेकर चिंतित हैं, जो उनकी ब्रांड छवि को नष्ट कर सकती हैं।

इस सबके चलते एआई रोलआउट कई तरीकों से बाधित हो सकता है, जिससे जोखिम पैदा होगा। उदाहरण के लिए, यदि ग्राफिक्स प्रोसेसिंग यूनिट, सीपीयू और मेमोरी चिप्स तेज अधिक एनर्जी-इफिशिएंट हो जाते हैं तो मौजूदा डेटा सेंटरों में उपकरणों का मूल्य तेजी से घट सकता है।

फिलहाल तो एआई लैब्स नए और बड़े मॉडलों को प्रशिक्षित करने के लिए भारी रकम का निवेश कर रहे हैं। उनकी सोच यह है कि किसी ऐसे जादुई बिंदु तक पहुंचने वाला पहला मॉडल- जहां वह सेल्फ-इम्प्रूविंग बन जाएगा- एआई की दुनिया पर राज करेगा और भारी मुनाफा कमाएगा। लेकिन अभी तक किसी भी मॉडल को कोई स्थायी बढ़त हासिल नहीं हुई है।

जब तक जेमिनाई (गूगल), क्लॉड (एन्थ्रोपिक) और चैटजीपीटी (ओपनएआई) यूजर्स के विशिष्ट सेगमेंट्स को आकर्षित करके (या आपस में विलय या सहभागिता करके) खुद को अलग नहीं बना लेते, यह देखना मुश्किल है कि ट्रेनिंग में उनके द्वारा किए जा रहे भारी-भरकम निवेश के लिए मुनाफा कहां से आएगा।

राजनेता भले ही अब तक किनारे पर खड़े देख रहे हों, लेकिन एआई के जोखिमों और चिंताओं को दूर करने के लिए वे देर-सबेर नीतिगत हस्तक्षेप करेंगे ही। चूंकि डेटा सेंटर भारी मात्रा में बिजली की खपत करते हैं- जिससे सभी के लिए बिजली की कीमत बढ़ जाती है- ऐसे में सरकारों पर उनके निर्माण को सीमित करने के लिए राजनीतिक दबाव बढ़ेगा।

उदाहरण के लिए, इंडियाना में कई काउंटियों ने हाल ही में डेटा-सेंटर निर्माण पर रोक की घोषणा की है। अगले वर्ष के लिए पहले से ही किए गए अनुमान यह सुझाव देते हैं कि हार्डवेयर निर्माता और डेटा सेंटर पर्याप्त अमेरिकी कंप्यूटिंग शक्ति की आपूर्ति करने में असमर्थ होंगे।

जहां एआई के वृहत्तर उपयोग में कई लोगों की उम्मीद से अधिक समय लग सकता है, वहीं हैकर्स और डीपफेकर्स द्वारा इसका दुर्भावनापूर्ण उपयोग, और बच्चों द्वारा इसका अनियंत्रित उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे में एआई मॉडलों के लिए रेगुलेशन और अधिक जवाबदेही की मांग करने वालों की आवाज मुखर होती जाएगी।

एआई से उत्पन्न जोखिम दुनिया की प्रमुख ताकतों के बीच संवाद को भी प्रेरित कर सकते हैं, जो शायद किसी प्रकार के एआई जिनेवा कन्वेंशन की ओर ले जाए। इन तमाम अनिश्चितताओं को देखते हुए यह स्पष्ट नहीं है कि एआई को कितनी व्यापकता से और कितनी तेजी से रोल-आउट किया जाएगा, और इससे किसे लाभ होगा।

अभी तक किसी भी एआई मॉडल को दूसरे पर कोई स्थायी बढ़त हासिल नहीं हुई है। यह देखना मुश्किल है कि जेमिनाई, क्लॉड या चैटजीपीटी के द्वारा ट्रेनिंग में किए जा रहे भारी-भरकम निवेश के लिए मुनाफा कहां से आएगा।

दैनिक जागरण

Date: 02-06-26

खेत बचाओ अभियान

संपादकीय

यह अच्छा है कि पश्चिम एशिया संकट के चलते रासायनिक उर्वरकों की आपूर्ति में कठिनाई और उनके मूल्यों में वृद्धि को देखते हुए केंद्र सरकार ने खेत बचाओ अभियान शुरू किया। इस अभियान को शुरू करने के पहले केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण और ग्रामीण विकास मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने जिस तरह देश भर के कृषि विज्ञान केंद्रों, आइसीएआर संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों एवं राज्य सरकारों के वरिष्ठ कृषि अधिकारियों और किसान संगठनों से गहन संवाद किया, उससे यह पता चलता है कि वे इस अभियान को वास्तव में सफल होते हुए देखना चाहते हैं। ऐसे किसी अभियान की सफलता जन भागीदारी और जागरूकता के माध्यम से ही संभव है। निःसंदेह इस अभियान में केंद्र सरकार को राज्यों का सक्रिय सहयोग चाहिए होगा।

इसी तरह यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि आम किसान यह समझें कि रासायनिक उर्वरकों का आवश्यकता से अधिक उपयोग केवल खेती की लागत ही नहीं बढ़ाता, बल्कि खेतों की मिट्टी की उर्वर क्षमता को भी कम करता है। इसके अतिरिक्त भूजल भी दूषित होता है। एक ऐसे समय जब जलवायु बदल रही है, तब उर्वरकों का अंसतुलित उपयोग खेती के सामने गंभीर चुनौती बन रहा है।

समस्या यह है कि औसत किसान यह समझ नहीं पा रहे हैं कि उर्वरकों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल अंततः उनके लिए घाटे का सौदा ही सिद्ध होता है, क्योंकि प्रारंभ में तो फसल अच्छी होती है, लेकिन समय के साथ खेतों की मिट्टी दूषित हो जाने के कारण उपज प्रभावित होती है।

वैसे तो प्रधानमंत्री ऐसी अपील करते रहे हैं कि किसान रासायनिक उर्वरकों का सही उपयोग करने के लिए खेतों की मिट्टी का परीक्षण कराएं और जैविक खाद के प्रयोग को बढ़ावा दें, लेकिन इसके बाद भी अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पाए और रासायनिक खादों का अंधाधुंध उपयोग जारी है। इसका एक कारण उर्वरकों पर दी जाने वाली सब्सिडी भी है। एक आंकड़े के अनुसार वित्त वर्ष 2026-27 में सरकार ने 1.7 लाख करोड़ रुपये उर्वरक सब्सिडी पर खर्च किए।

इस वर्ष यह खर्च कहीं अधिक बढ़ने के आसार हैं, क्योंकि अधिकतर उर्वरकों का आयात किया जाता है और अमेरिका-ईरान तनाव के चलते अंतरराष्ट्रीय बाजार में उनके मूल्य बढ़ते जा रहे हैं। उर्वरक मंत्री जेपी नड्डा की मानें तो जहां दो बोरी उर्वरक के उपयोग की आवश्यकता होती है, वहां किसान चार बोरी का उपयोग करते हैं।

वास्तव में जब भी कोई वस्तु सब्सिडी के चलते कम मूल्य पर उपलब्ध कराई जाती है तो उसका अनावश्यक उपयोग बढ़ जाता है। तथ्य यह भी है कि किसानों को सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराए जाने वाले उर्वरक की कालाबाजारी भी होती है, क्योंकि उसका इस्तेमाल औद्योगिक रसायन के रूप में भी होता है।

Date: 02-06-26

अविश्वास से घिरती जा रहीं परीक्षाएं

जगमोहन सिंह राजपूत, (लेखक एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक हैं)

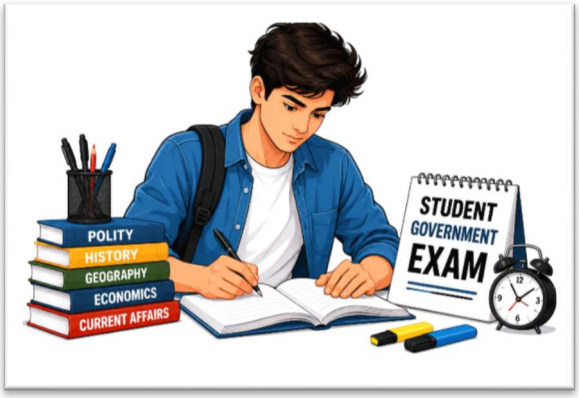

देश में प्रश्नपत्रों का परीक्षा से पहले 'आउट' हो जाना लगभग सामान्य प्रक्रिया बन चुकी है। इसका विस्तार बोर्ड एवं प्रतियोगी परीक्षाओं से लेकर सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के लिए होने वाली परीक्षाओं तक फैल चुका है। सरकारी तंत्र ने अगले वर्ष के लिए सुधारों का आश्वासन दिया है। यह आवश्यक भी था, लेकिन जो अविश्वास पूरे देश में फैल चुका है, क्या उसका समाधान भी हो पाया है? अपराधियों पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं होती। कुछ लोग तो वर्षों से इस प्रकार के अवैध कार्यों को व्यवसाय की तरह संचालित करते रहे हैं। निश्चित रूप से उन्हें कहीं न कहीं से संरक्षण भी मिलता रहा होगा।

हर बार सरकारी तंत्र प्रश्नपत्र तैयार करने, उसे परीक्षा केंद्रों तक सुरक्षित पहुंचाने और परीक्षा प्रारंभ होने तक उसकी गोपनीयता बनाए रखने की व्यवस्था में सुधार करता है, लेकिन समस्या का एक बड़ा पक्ष ऐसा भी है, जिसे सभी जानते हैं, पर उसकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। कुछ वर्ष पहले बिहार की एक बोर्ड परीक्षा के परिणामों को लेकर देशव्यापी चर्चा हुई थी। उस दौरान एक छात्रा का यह कथन व्यवस्था की गंभीर खामियों को उजागर करने वाला था कि 'मैं तो सेकेंड डिवीजन में पास होना चाहती थी, चाचा ने टाप करा दिया।' यह एक ऐसा संकेत था, जो समस्या के वास्तविक समाधान की दिशा दिखा सकता था।

हमें इस पर भी विचार करना होगा कि आखिर लीक हुए प्रश्नपत्र कौन खरीदता है? इसके लिए धन तो परिवार ही देता है और साल्वर, वह भी नीट जैसी परीक्षा में, कौन बन सकता है? कोई मेडिकल की पढ़ाई कर रहा छात्र या डाक्टर बन चुका सुशिक्षित व्यक्ति ही यह कार्य कर सकता है। क्या इस देश ने कभी नागरिकों को यह बताया कि किसी साल्वर को या बड़ी धनराशि देकर अपने लाड़लों के लिए प्रश्नपत्र खरीदने वाले परिवार के किसी सदस्य को क्या सजा मिली? इस प्रकार के मामलों और ऐसी अन्य कारगुजारियों में अपराधियों को दंडित करने के मामले में भारत इतना कमजोर क्यों है? या यूं कहें कि व्यवस्था इतनी शिथिल क्यों है? संविधान में मूलभूत कर्तव्य 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़े गए थे। यदि सरकार, शिक्षित वर्ग और समाज इनका पालन करते होते तो क्या प्रश्नपत्र लीक होते? आगे क्या केवल कानून बदलकर प्रश्नपत्र लीक को रोका जा सकेगा? व्यवस्था को लगातार सतर्क तो रहना ही होगा, लेकिन जब तक शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर मानवीय तत्व को जागृत करने में असमर्थ रहेगी, तब तक ऐसी आशंकाएं साकार होती रहेंगी और परीक्षाओं की साख पुनः स्थापित नहीं हो पाएगी। नीट के प्रश्नपत्र लीक मामले की जांच तेजी से चल रही है। यह स्पष्ट हो गया है कि जो लोग प्रश्नपत्र बनाने योग्य समझे गए थे, जो विशेषज्ञ माने जाते थे, वे अपेक्षित नैतिक स्तर पर खरे नहीं उतरे।

स्वतंत्रता के बाद के पहले कई दशकों तक परीक्षाओं के प्रश्नपत्र लीक क्यों नहीं होते थे। वर्ष 1965-70 तक समाज में हर तरफ ऐसे लोग उपस्थित थे, जिन्होंने देश की आजादी के लिए त्याग किया था, तपस्या की थी और अपना सर्वश्रेष्ठ देश तथा उसके नागरिकों के लिए समर्पित कर दिया था। आज स्थिति कहां पहुंच गई है? सत्ता में पहुंचकर या व्यवस्था का अंग बनकर सामान्य जन को भूल जाना लगभग पूरी तरह स्वीकार्य हो चुका है। महात्मा गांधी का एक सूत्र-वाक्य लगभग हर विचार-विमर्श में दोहराया जाता है कि 'प्रकृति के पास सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त संसाधन हैं, लेकिन किसी एक व्यक्ति के लालच की पूर्ति के लिए नहीं।' क्या नीट परीक्षा के प्रश्नपत्र लीक होने जैसी अनेक कष्टदायक घटनाओं के कारण इसी विचार में कहीं छिपे नहीं हैं? अंततः वह धन-लोलुपता ही है, जो एक अनुभवी अध्यापक को अपनी नैतिकता और कर्तव्यनिष्ठा को भुलाकर एक जघन्य सामाजिक अपराध की ओर धकेल देती है। यह उस शिक्षा-व्यवस्था और पाठ्यक्रम की भी असफलता है, जो विद्यार्थियों को परीक्षाएं तो उत्तीर्ण करा देता है, लेकिन शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य-नैतिकता और मानवीय मूल्यों के साथ व्यक्तित्व-निर्माण में पूरी तरह असफल सिद्ध होता है। नैतिकता का ह्रास भारत के भविष्य पर सीधी चोट कर रहा है।

विज्ञान, तकनीक, अंतरिक्ष, एआइ और संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत के युवा किसी से पीछे नहीं हैं। फिर भी प्रश्न यह है कि हम परीक्षाओं को ईमानदारी और विश्वास के साथ संपन्न कराने में स्वयं को असमर्थ क्यों पाते हैं? एक महत्वपूर्ण पक्ष, जिस पर अपेक्षित चर्चा नहीं होती, वह है मनुष्य की बढ़ती स्वार्थपरकता, संग्रह की प्रवृत्ति और धन के निर्बाध दुरुपयोग का अहंकार। स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक इस विषय पर गंभीर वैचारिक मंथन की आवश्यकता है। ऐसी शिक्षा-पद्धति और विकल्पों की तलाश करनी होगी, जो केवल ज्ञान और कौशल ही नहीं, बल्कि नैतिकता से संपन्न व्यक्तित्व का भी निर्माण करें। साथ ही जनप्रतिनिधियों को भी अपने जीवन के लक्ष्यों, सामाजिक दायित्वों और जनहित की समझ पर निरंतर आत्ममंथन करते रहना होगा। केवल आर्थिक और तकनीकी प्रगति पर्याप्त नहीं है। यदि उसके साथ नैतिक विकास नहीं जुड़ा होगा तो समाज और राष्ट्र दोनों ही गंभीर चुनौतियों का सामना करते रहेंगे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 02-06-26

प्लास्टिक मुद्रा

संपादकीय

इस समाचार पत्र ने भी यह प्रकाशित किया है कि भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) पॉलिमर बैंक नोट को फिर से शुरू करने जा रहा है। सरसरी तौर पर भले ही यह अनावश्यक लगे लेकिन यह निर्णय ध्यान देने लायक है। खासतौर पर तब जबकि भारत डिजिटल भुगतान में दुनिया में अग्रणी देश के रूप में उभरा है। लेकिन आंकड़े कुछ और ही कहते हैं। नकदी को अप्रासंगिक बनाने के बजाय भारत की डिजिटल भुगतान क्रांति के साथ-साथ मुद्रा के उपयोग में लगातार वृद्धि हुई है।

इसलिए केंद्रीय बैंक के सामने चुनौती यह है कि मुद्रा के प्रवाह को अधिक कुशल, सुरक्षित और टिकाऊ बनाया जाए। रिजर्व बैंक की नवीनतम वार्षिक रिपोर्ट इस वास्तविकता को रेखांकित करती है। वर्ष 2025-26 में प्रचलित मुद्रा 11 फीसदी से अधिक बढ़ी, जो पिछले वर्ष की 5.8 फीसदी वृद्धि से लगभग दोगुनी है, जबकि इसी दौरान डिजिटल भुगतान भी तेजी से विस्तार करता रहा। दूसरे शब्दों में कहें तो डिजिटल और नकद भुगतान एक-दूसरे का स्थान नहीं ले रहे है बल्कि साथ-साथ मौजूद है। इस बढ़ते मुद्रा भंडार का प्रबंधन लगातार महंगा होता जा रहा है। वर्ष 2024-25 में बैंक नोट छापने पर 6,300 करोड़ रुपये से अधिक की राशि खर्च हुई। इसी समय लगभग 24 अरब घिसे-पिटे नोटों को प्रचलन से वापस लिया गया जो घिसी हुई मुद्रा को बदलने के परिचालन बोझ को उजागर करता है। छोटे मूल्य वर्ग के नोट जो बार-बार हाथ बदलते हैं वे खासतौर पर जल्दी खराब हो जाते हैं। ऐसे में यह उचित ही है कि रिजर्व बैंक 10 और 20 रुपये के नोटों के लिए एक प्रायोगिक परियोजना पर विचार कर रहा है। छोटे मूल्य वर्ग के नोटों का हिस्सा भी बढ़ाया जाना चाहिए। यह कहना मुश्किल नहीं है कि छोटे मूल्य वर्ग के नोटों की उपलब्धता अक्सर लेनदेन को प्रभावित करती है। पॉलिमर नोट पतले प्लास्टिक से बने होते हैं जो नमी, गंदगी और फटने के मामले में अधिक सुरक्षित होते हैं। हालांकि पॉलिमर मुद्रा छापने की प्रारंभिक लागत अधिक होती है लेकिन अंतरराष्ट्रीय अनुभव बताता है कि ये आर्थिक दृष्टि से बेहतर साबित होते हैं। चूंकि पॉलिमर नोट्स काफी लंबे समय तक टिकते हैं इसलिए कम संख्या में नोटों को छापना, लाना ले जाना, संसाधित करना और नष्ट करना पड़ता है। सबसे अधिक बचत छोटे मूल्यवर्ग के नोटों में होती है जो सबसे अधिक प्रचलन में रहते हैं।

इस संदर्भ में ऑस्ट्रेलिया का अनुभव उल्लेखनीय है। पॉलिमर मुद्रा के मामले में अगुआ होने के नाते उसने अनुमान लगाया कि इस बदलाव से प्रतिस्थापन और हैंडलिंग लागत में कमी के कारण दीर्घकालिक बचत हुई। ऑस्ट्रेलिया के कागजी नोट पहले छोटे मूल्यवर्ग में केवल 6 से 12 महीने तक चलते थे, जबकि पॉलिमर नोट कई वर्षों तक टिके। कनाडा, ब्रिटेन, न्यूजीलैंड और सिंगापुर जैसे देशों ने भी पॉलिमर नोट अपनाए हैं जिनका कारण टिकाऊपन, उन्नत सुरक्षा और कम जीवनचक्र लागत है।

पारदर्शी विंडो और माइक्रो ऑप्टिक तत्व जैसी उन्नत सुरक्षा विशेषताएं पॉलिमर नोटों को नकल के लिहाज से भी अधिक सुरक्षित बनाती हैं। पर्यावरणीय तर्क भी उतना ही प्रभावशाली है। विदेश में केंद्रीय बैंकों द्वारा किए गए अध्ययनों में पाया गया है कि पॉलिमर नोट अपने जीवनकाल में कम संसाधनों का उपभोग करते हैं। इसके अलावा चलन से हटाए गए पॉलिमर नोटों को अन्य प्लास्टिक उत्पादों में पुनर्चक्रित भी किया जा सकता है। ये सभी लाभ विचारणीय हैं।

इस प्रकार अग्रिम लागत, एटीएम के अनुकूल बनाए जाने, नकदी प्रबंधन अधोसंरचना और जनस्वीकृति का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना होगा। भारत का 2012 में पॉलिमर नोट पेश करने का पहले का प्रयास तकनीकी सीमाओं के कारण असफल रहा था। विशेष रूप से पुराने एटीएम और गिनती मशीनों की अक्षमता के कारण ऐसा हुआ जो प्लास्टिक की सामग्री को सही ढंग से पहचानने संभालने और वितरित करने में सक्षम नहीं थीं। पॉलिमर नोट उपयोगकर्ताओं को घिसे-पिटे और फटे नोटों से नियमित रूप से निपटने की बड़ी असुविधा से भी राहत देंगे। खासकर छोटे मूल्यवर्ग के नोटों में क्योंकि उन्हें बदलवाना हमेशा आसान नहीं होता।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 02-06-26

नेपाल में नए दावे

संपादकीय

नेपाल के प्रधानमंत्री बालेंद्र शाह ने अपने देश की संसद में कुछ ऐसी टिप्पणियां की हैं, जिनसे वहां एक नवा विवाद शुरू हो गया है। नेपाली संसद के मौजूदा सत्र में अपनी पहली उपस्थिति पर बालेंद्र शाह ने भारत के साथ सीमा विवाद का जिक्र विवादास्पद ढंग से किया है। उनके बयान के दो पहलू हैं। पहला, शाह के अनुसार, लिपुलेख दर्रे का विवाद कूटनीति के माध्यम से सुलझाया जा सकता है और इसके लिए उनकी सरकार ने ब्रिटेन और चीन से संपर्क किया है। नेपाली प्रधानमंत्री का यह तर्क चिंताजनक है कि चूंकि यह विवाद ब्रिटिश भारत काल से चला आ रहा है, इसलिए समाधान में ब्रिटेन की भागीदारी आवश्यक है। यह तो और भी असुविधाजनक है कि वह भारत के साथ सीमा विवाद सुलझाने में चीन को भी शामिल करना चाहते हैं। पड़ोसी प्रधानमंत्री की यह इच्छा कूटनीति के लिहाज से नेपाल को अनुकूल लग सकती है। दरअसल, भारत के कुछ अन्य पड़ोसी भी हैं, जो किसी विदेशी ताकत के साथ मिलकर भारत विरोध का लाभ उठाते रहे हैं। दक्षिण एशिया को जिस मकसद से टुकड़ों में बांटा गया था, वह मकसद हमारा एक पड़ोसी देश पूरा करता दिखना चाहता है, तो आश्चर्य की बात नहीं।

पड़ोसी प्रधानमंत्री की ताजा टिप्पणी का दूसरा पहलू तो और भी सनसनीखेज है। उन्होंने अपनी संसद में दावा किया है कि नेपाल ने कई जगह भारतीय क्षेत्र का अतिक्रमण कर रखा है, क्षेत्रीय अतिक्रमण एकतरफा नहीं है। वह आश्चर्य जताते हैं कि उन्हें भी प्रधानमंत्री बनने के बाद ही यह बात पता चली। हालांकि, उनकी यह दलील स्वागतयोग्य है, दोनों देशों को तथ्यों का निष्पक्ष रूप से विश्लेषण करना चाहिए और विवाद सुलझाने के लिए मिलकर काम करना चाहिए। उनकी ताजा टिप्पणी का खुद नेपाल में विरोध शुरू हो गया है। वहां की विपक्षी पार्टियां चाहती हैं कि उनके प्रधानमंत्री की इस टिप्पणी को संसदीय रिकॉर्ड से हटाया जाए। नेपाल में ही बालेंद्र शाह से सुबूतों की मांग हो रही है। वाकई यह जानना जरूरी है कि उन्होंने यह दावा क्यों और कैसे किया है? क्या यह दावा नेपाल की ताकत दिखाने के लिए है या इस दावे का मतलब सीमा विवाद सुलझाने के लिए भारत पर दबाव बनाना है? यह बिल्कुल नए तरह का विवाद है, जिस पर नेपाल में सरगर्मी तेज हो गई है। बहरहाल, भारत की प्रतिक्रिया सावधानी भरी है और विवाद बढ़ाने की किसी भी प्रत्यक्ष या परोक्ष कोशिश से बचना ही सबसे अच्छी रणनीति है। नेपाल नए बदलावों से गुजर रहा है। उसके लिए यही बेहतर है कि वह अपने बुनियादी विकास पर ज्यादा ध्यान दे। भारत के साथ विवाद खड़ा करने की कोई भी कोशिश नेपाल की मुश्किलों को कम नहीं करेगी। दुर्भाग्य से भारत विरोध वा भारत से खटास की राजनीति नेपाल के अनेक नेता करते रहे हैं। लिपुलेख, कालापानी व लिपियाधुरा को नेपाल की सीमा में दिखाने की कोशिश होती रही है। अब समय आ गया है, जब दोनों देशों को 1816 में हुई सुगौली संधि के प्रावधानों से आगे बढ़ना चाहिए। सीमा विवाद का स्थायी समाधान करना दोनों ही देशों के हित में है। इसके लिए एक ठोस कार्य और समय-योजना बना लेने का समय आ गया है। दोनों देश एक-दूसरे के स्वाभाविक सहोदर हैं। दोनों को समग्रता में अपने संबंधों का सम्मान करते हुए भविष्य की चिंता करनी

चाहिए । नेपाल के लिए भारत का और भारत के लिए नेपाल का प्रेम सदियों पुराना है, इसमें किसी भी प्रकार का व्यवधान पैदा करना अपनी विरासत के विरुद्ध जाना होगा।